RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-05
Issue-12
December-2020

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]
DOI: https://doi.org/10.31305/rrijm.2020.v05.i12.024

वर्तमान परिदृश्य में गाँधी के विचारों की प्रसांगिकता

प्रवीण कुमार

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 14 December 2020

Keywords
सत्य, अहिंसा, सविनय अवज्ञा, परमात्मा, चमत्कृत।

ABSTRACT

गाँधी दर्शन के अतिरिक्त संकालिक युग में वैज्ञानिक दर्शन, मार्क्सवाद एवं अस्तित्ववाद सर्वाधिक प्रभावी एवं चर्चित जीवन दर्शन है। विज्ञान की उपलब्धियों एवं अनुसंशानों ने मनुष्य को चमत्कृत कर दिया है। प्रतिक्षण अनुसंधान हो रहे है। जिन घटनाओं को न समझ पाने के कारण उन्हें अगम्य रहस्य मान लिया गया था वे आज अनुसंधेय हो गयी है। तत्वचिन्तकों ने सृष्टि की बहुत–सी गुत्थियों की व्याख्या परमात्मा एवंमाया के आधार पर की। इस कारण उनकी व्याख्या इस लोक का यथार्थ न रहकर परलोक का रहस्य बन गयी। आज का व्यक्ति उस रहस्य के बारें में भी जानना चाहता है। अन्वेषण का जिज्ञासा बढ़ती जा रही है। आज जितना भौतिक विकास हुआ है, वह आज के पहले कल्पनातीत था। मगर इसके साथ यह भी तथ्य है कि भौतिकवादी प्रगति एवं विकास के बावजूद मनुष्य सुखी रही है। व्यक्ति की चेतना क्षणिक, संशयपूर्ण एवं तात्कालिकता में केन्द्रित होती जा रही है। सम्पूर्ण भौतिक सुखों को अकेला ही भोगने की दिशा में व्यग्र मनुष्य अन्ततः अतृत्ति का अनुभव कर रखा है। वैज्ञानिक विकास को कारण हमने जिस शक्ति का संग्रह किया है, उसका उपयोग किस प्रकार हो, प्राप्त गति एवं ऊर्जा का नियोजन किस प्रकार हो– यह आज के युग की जटिल समस्या है। वैज्ञानिक दर्शन की सीमा विज्ञान की सीमा के कारण भी स्पष्ट है। विज्ञान बुद्धि एवं तर्क मात्र के आश्रित है। मानवीयता एवं सामाजिकता केवल तर्क एवं बुद्धि से संगठित नहीं होते। उनके संगठन में तर्क एवं बुद्धि के अतिरिक्त कल्पना, मनोभाव एवं संवेगों की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जीवन में केवल बुद्धिजगत के ही नहीं अपितु भावजगत के तत्व भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते है। गाँधी ने विज्ञान की विकासवादी एवं तार्किक दृष्टि का समर्थन किया तथा प्रतिपादित किया कि निरंतर विकास जीवन का नियम है। इतना होते हुए भी वे इस बात के लिए सजग रहे कि विज्ञान को अपना कार्य मानवता के हित के लिए करना चाहिए।[1]

मार्क्सवाद वर्ग संघर्ष पर आधारित है। साम्यवादी विचारधारा मनुष्य की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के संबंध में अत्यन्त निर्मम तथा कठोर है। वर्ग संघर्ष एवं द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी चिंतन के कारण वह समाज को बांटती है। गतिशील पदार्थों की विरोधी शक्तियों के संघर्ष या द्वन्द्व को जीवन की भौतिकवादी व्यवस्था के मूल में मानने के कारण सतत् संघर्ष की भूमिका प्रदान करती है, मानव जाति को परस्पर अनुराग एवं एकत्व की आधारभूमि प्रदान नहीं करती। चूंकि मार्क्सवाद हिंसात्मक क्रांति में विश्वास करता है, इस कारण जिन देशों में हिंसात्मक क्रांतियॉ हुई, उनकी परिणति मानसिक उत्पीडन में हुई। हिंसा के माध्यम से सत्ता पर कब्जा करने के बाद शासनाध्यक्ष के कोष में आत्म– स्वतंत्र्य शब्द की सत्ता समाप्त हो जाती है। सभी प्रकार की स्वतंत्रता का दमन किया जाता है।[2]

शोध विस्तार– गांधी का समाजवाद एवं साम्यवाद के समता के प्रत्यय में विश्वास ही नहीं था अपितु उसे उनका समर्थन भी प्राप्त था मगर हिंसा के वे विरोधी थे। उनका कथन है: 'हमारा समाजवाद अथवा साम्यवाद अहिंसा पर आधारित होना चाहिए जिसमें मालिक मजदूर एवं जमीदार किसान के बीच सद्भाव पूर्ण सहयोग हो'। वे सामाजिक समता के पक्षधर थे: 'ईश्वर इतना निर्दयी एवं क्रूर नहीं हो सकता कि पुरूष–पुरूष और स्त्री–स्त्री के बीच भेदभाव करे।'

अस्तिववादी दर्शन यह मानता है कि मनुष्य का स्रष्टा ईश्वर नहीं है और इसीलिए मानव–स्वभाव, उसका विकास, उसका भविष्य भी निश्चित एवं पूर्व मीमांसित नहीं है। मनुष्य वह है जो अपने आपको बनाता है। मानव को महत्व देते हुए भी अस्तित्ववादी–दर्शन समाज के धरातल पर अत्यन्त अव्यवहारिक है। वह यह मानता है कि चेतनाओं के पारस्परिक संबंधों की आधार भूमि सामंजस्व नहीं अपितु विरोध है। व्यक्तियों के अस्तित्व वृत्तों के मध्य संघर्ष, भय, घृणा आदि भाव है। इस प्रकार अस्तित्ववादी दर्शन व्यक्ति और व्यक्ति के मध्य संघर्ष एवं अविश्वास की भूमिका का निर्माण करता है।[3]

मध्ययुग में विकसित धर्म एवं दर्शन के परम्परागत स्वरूप एवं धारणाओं के प्रति आज के व्यक्ति की आस्था नहीं है। मध्ययुगीन चेतना के केन्द्र में ईश्वर का कर्त्तव्य रूप प्रतिष्ठित था। मध्ययुगीन धर्म एवं दर्शन के प्रमुख घटक थे–स्वर्ग की कल्पना, सृष्टि एवं जीवों के कर्ता रूप में ईश्वर की कल्पना, वर्तमान जीवन की निरर्थकता का बोध, अपने देश

RRIJM 2015, All Rights Reserved

एवं काल की माया एवं प्रपंचों से परिपूर्ण अवधारणा। अपने श्रेष्ठ आचरण, श्रम एवं पुरूषार्थ द्वारा अपने वर्तमान जीवन की समस्याओं का समाधान करने की ओर हमारा ध्यान कम गया, अपने आराध्य की स्तुति एवं जयगान करना ही हमारी धर्मचर्चा का पर्याप्त हो गया। धर्म की आड़ में अपने स्वार्थों की सिद्धि करने वाले धर्म के दलालों ने अध्यात्म–सत्य को भौतिकवादी आवरण से ढ़कने का प्रयास किया। इनकी चिंता का केन्द्र मनुष्य की वर्तमान समस्याओं का समाधान नहीं था। इन्होंने मनुष्य को स्वर्ग अथवा बहिश्त में पहुंचकर मौजमस्ती की जिन्दगी बिताने की राह दिखाई और उपदेश किया कि हमारे माध्यम से अपने आराध्य के प्रति तन–मन–धन से समर्पण करो–पूर्ण आस्था, पूर्ण विश्वास, पूर्ण निष्ठा के साथ भक्ति करो। तक को साधना पथ का सबसे बड़ा अवरोधक तथा वर्तमान की सारी मुसीबतों का कारण 'भाग्य' अथवा 'ईश्वर की मर्जी' को मान लिया गया। धर्म के ठेकेदारों ने पुरूषार्थवादी–मार्ग के मुख्य–द्वार पर ताला लगा दिया। समाज या देश की विपन्नता को उसकी नियति मान लिया गया। समाज स्वयं भी भाग्यवादी बनकर अपनी सुख–दुःखात्मक स्थितियों से संतोष करता रहा। इस बारे में गांधी की दृष्टि स्पष्ट हैः 'विश्वास को हमेशा तर्क से तौलना चाहिए। जब विश्वास अंधा हो जाता है तो मर जाता है।'[4]

आज के युग में यह चेतना प्रदान की है कि विकास का रास्ता हमें स्वयं बनाना है। किसी समाज या देश की समस्याओं का समाधान कर्म–कौशल, व्यवस्था–परिवर्तन, वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास, परिश्रम तथा निष्ठा से संभव है। इस कारण व्यक्ति, समाज तथा देश अपनी समस्याओं के समाधान करने के लिए तत्पर है, जिन्दगी को बेहतर बनाने के लिए प्रयत्नशील है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति एवं विकास की ललक बढ़ रही है। आज के मनुष्य की रूचि अपने वर्तमान जीवन को संवारने में अधिक है। उसका ध्यान 'भविष्योन्मुखी' न होकर वर्तमान में है। वह दिव्यताओं को अपनी ही धरती पर उतार लाने के प्रयास में लगा हुआ है। वह पृथ्वी को ही स्वर्ग बना देने के लिए बेताब है। मध्ययुगीन चेतना के केन्द्र में ईश्वर प्रतिष्ठित था। आज की चेतना के केन्द्र में मनुष्य प्रतिष्ठित है। मनुष्य ही सारे मूल्यों का स्रोत है। वही सारे मूल्यों का उपादान है। व्यक्ति परम्परागत मूल्यों पर विश्वास नहीं कर पा रहा है क्योकि वे अविश्वसनीय एवं अप्रासंगिक हो गये है। नये युग को नये जीवन–मूल्य चाहिए। आज के संत्रस्त मनुष्य को आशा एवं विश्वास की आलोकशिखा धमानी है। आज के धार्मिक एवं दार्शनिक मनीषियों को वह मार्ग खोजना है जिससे मानव अपनी बहिर्मुखता के साथ–साथ अन्तर्मुखता का भी विकास कर सके। पारलौकिक चिंतन व्यक्ति के आत्म विकास में चाहे कितना भी सहायक हो किन्तु उससे सामाजिक संबंधों की सम्बद्धता, समरसता एवं समस्याओं के समाधान में अधिक सहायता नहीं मिलती। आज के भौतिकवादी युग में केवल वैराग्य से काम चलने वाला नहीं है। भौतिकवाद का अतिरेक भी मनुष्य को संतुष्ट नहीं कर पा रहा है। आज हमें मानव की भौतिकवादी इच्छाओं को संयमित करना होगा, स्वार्थ की कामनाओं में परार्थ का रंग मिलाना होगा।[5] आज मानव को न तो परम्परागत दर्शन शांति दे सकता है कि केवल ब्रह्य सत्य है, जगत मिथ्या है तथा न केवल भौतिक तत्वों की ही सत्ता को सत्य मानने वाला दृष्टिकोण जीवन के उन्न्यन में सहायक हो सकता है। आज के संसार को ऐसे धर्म–दर्शन की आवश्यकता है जो उसकी वर्तमान समस्याओं का समाधान कर सके। मन की कामनाओं को नियंत्रित किये बिना समाज रचना संभव नहीं है। इस संदर्भ में यह ध्यातव्य है कि मानव मन की असीम कामनाओं को सीमित करने की क्षमता भौतिकवादी दृष्टि में नहीं है, इस क्षमता के लिए मानव मन में उदारता, सहिष्णुता एवं प्रेम की भावना का विकास आवश्यक है। गांधी का मत था कि 'क्रोध एवं असहिष्णुता सही समझ के दुश्मन है।'[6]

व्यक्ति धर्म को छोड़ना नहीं चाहता। मगर परम्परागत धर्म उसके विज्ञानसम्मत विवेक को संतुष्ट नहीं कर पा रहा है। पाश्चात्य समाज ऐसे किसी धर्म की कल्पना नहीं कर पा रहा है जिसका स्वरूप ईश्वर के कर्त्तृत्व के बिना विवेचित किया जा सके। अध्यात्म एवं विज्ञान के बीच सामरस्य का मार्ग स्थापित करने के लिए परम्परागत धर्म की इस मान्यता को छोड़ना होगा कि यह संसार ईश्वर की इच्छा की परिणति है। हमें विज्ञान की इस दृष्टि को स्वीकार करना होगा कि सृष्टि रचना के व्यापार में ईश्वर के कर्त्तृत्व की कोई भूमिका नहीं है। सृष्टि रचना व्यापार में प्रकृति के नियमों को स्वीकार करना होगा। विज्ञान को भी अपनी भौतिकवादी सीमाओं का अतिक्रमण करना होगा। विज्ञान विशुद्ध रूप से भौतिकवादी रहा है। विश्व के मल में पदार्थ एवं शक्ति को ही अधिष्ठित देखता आया है। विज्ञान ने अभी तक सत्ता के भौतिक क्षितिज मात्र का ही स्पर्श किया है। उसे भविष्य में भौतिक क्षितिज के पार की अपार्थिव चिन्मय सत्ता का भी संस्पर्श करना होगा। भविष्य के विज्ञान को अपना यह आग्रह भी छोड़ना होगा कि जड़ पदार्थ से चेतना का आविर्भाव होता है। विज्ञान की अध्ययन सीमा जड़ पदार्थ है। यदि वह अपनी अध्ययन सीमा जड़ पदार्थ तक सीमित रखता है तो यह संगत है मगर जड़ पदार्थ से चेतना का भी आविर्भाव होता है–यह मानना विज्ञान का दुराग्रह है।

आज हमें धर्म के केन्द्र में मनुष्य को प्रतिष्ठित कर उसके पुरूषार्थ एवं विवेक को जाग्रत करना है, उसके मन में सृष्टि के समस्त जीवों के प्रति अपनत्व भाव जगाना है। मनुष्य और मनुष्य के बीच आत्मतुल्यता की ज्योति जगानी है जिससे परस्पर समझदारी, प्रेम तथा विश्वास उत्पन्न हो सके। धर्म की प्रासंगिकता एक व्यक्ति की मुक्ति में ही नहीं है। धर्म की प्रासंगिकता एवं प्रयोजनशीलता शान्ति, व्यवस्था, स्वतंत्रता, समता, प्रगति एवं विकास से संबंधित समाज सापेक्ष परिस्थितियों के निर्माण में भी निहित है।

RRIJM 2015, All Rights Reserved

धर्म का संबंध आचरण से है। धर्म आचरणमूलक है। दर्शन एवं धर्म में अन्तर है। दर्शन मार्ग दिखाता है, धर्म की प्रेरणा से हम उस मार्ग पर बढ़ते हैं। हम किस प्रकार का आचरण करे– यह ज्ञान दर्शन से प्राप्ति होता है। जिस समाज में दर्शन एवं धर्म में सामंजस्य रहता है, ज्ञान एवं क्रिया में अनुरूपता होती है, उस समाज में शान्ति होती है तथा सदस्यों में परस्पर मैत्री –भाव रहता है।[7]

भारतवर्ष में दर्शन और चिंतन के धरातल पर जितनी विशालता, व्यापकता एवं मानवीयता रही है, उतनी आचरण के धरातल पर नहीं रही। जब चिंतन एवं व्यवहार में विरोध उत्पन्न हो या तो भारतीय समाज की प्रगति एवं विकास की धारा भी अवरूद्ध हो गयी। दर्शन के धरातल पर उपनिषद् के चिन्तकों ने प्रतिपादित किया कि यह जितना भी स्थावर जंगम संसार है, वह सब एक ही परब्रह्म के द्वारा आच्छादित है। उन्होंने संसार के सभी प्राणियों को 'आत्मवत्' मानने एवं जानने का उद्घोष किया, मगर सामाजिक धरातल पर समाज के सदस्यों को उनके गुणों के आधार पर नहीं अपितु जन्म के आधार पर जातियों, उपजातियों, वर्णों, उपवर्णों में बांट दिया तथा इनके बीच ऊँच–नीच की दीवारें खड़ी कर दी। गांधी दर्शन इन सभी दिवारों को तोड़ता है तथा प्रत्येक व्यक्ति को प्राणिमात्र की पीड़ा से द्रवित होने तथा उसकी सेवा करने की प्रेरणा प्रदान करता है। गांधी दर्शन विश्व को यह दृष्टि प्रदान करता है कि विकास का अर्थ केवल मशीनों के द्वारा अधिक उत्पादन करना नहीं है। विकास अपने में साध्य नहीं है। विकास केवल साधन है। विकास का लक्ष्य मनुष्य है। विकास साधन है और साध्य है– मनुष्य जाति का हित–सम्पादन। विकास का उद्देश्य है–मनुष्य की समग्र उन्नति। विश्व में विकास की ऐसी व्यवस्था स्थापित हो जिससे मनुष्य के अन्तर्जात गुणों का पूर्ण विकास संभव हो सके। उसकी सृजनशीलता की विविध रूपों में पूर्ण अभिव्यक्ति संभव हो सके, मनुष्य की भौतिक संतुष्टि के साथ–साथ उसकी आत्मिक संतुष्टि भी हो सके। मनुष्य अपना जीवन सुखी बनाने के साथ–साथ उसे सार्थक भी बना सके। इसके लिए हमें विकास को पूर्णतः मानवीय दृष्टि से देखना होगा। विश्व की अर्थव्यवस्था की संरचनात्मक समस्याओं का हल ढूँढते समय तथा नीतियों को क्रियान्वित करते समय नीति–निर्माताओं को इस बात को ध्यान में रखना होगा कि नीति का लक्ष्य विकसित एवं विकासशील देशों के समाजों में विद्यमान आर्थिक असमानताओं को दूर करना है। विकास मात्र आर्थिक उन्नति पर ही केन्द्रित नहीं रह सकता। जन–जन की निर्धनता समाप्त करने, रोजगार के अवसर बढाने, पुरूष एवं स्त्री वर्गों की असमानताओं को दूर करने तथा संसार के सभी लोगों की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए सभी देशों से यह अपेक्षित है कि वे एकीकृत तथा सार्वदेशिक दृष्टि से विचार करे, नीतियॉ बनावें तथा कार्यक्रमों को क्रियान्वित करें। गरीबी और सामाजिक कुव्यवस्था ये दोनों ही आर्थिक विकास और जीवन–स्तर–उन्नयन के मार्ग की मुख्य रूकावटे है। इस कारण विकास की दिशा में आर्थिक उपायों के साथ–साथ सामाजिक दृष्टि से भी संगठित प्रयास किए जाने जरूरी है।[8]

गांधी ने शहरों की अपेक्षा गाँवों को अधिक महत्व दिया। इस मुद्दे पर कुछ तथाकथित प्रगतिशील विद्वान गांधी को दकियानूस, रूढ़िवादी, पुरातनपंथी एवं प्रतिगामी ठहरा सकते है। उन विद्वानों को खुले दिमांग से मुलाहजा फरमाना चाहिए कि हमारे सर्वाधिक विकसित महानगरों में जनसंख्या का बढ़ता बोझ भारी आर्थिक और सामाजिक समस्याऐं ही पैदा नहीं कर रहा है। अपितु पर्यावरण के लिए भी संकट उत्पन्न कर रहा है। शहरी जनसंख्या के विस्तार के कारण शहरों में अन्धाधुन्ध भवनों का निर्माण हो रहा है। अव्यावहारिक भवन–निर्माण–परियोजनाओं के कारण शहरों के मकान 'घर' न होकर 'माचिस की बन्द डिब्बियों' के रूप में बदलते जा रहे है। प्रत्येक शहर अपनी पहचान खोता जा रहा है तथा इस्पात और कंकरीट आदि भौतिक पदार्थों से निर्मित बहुमंजिली इमारतों के जंगल में बदलता जा रहा है। शहरों का फैलाव इतना अधिक बढ़ता जा रहा है कि व्यक्ति कोअपने फ्लैट से निकलकर अपने कर्म– स्थल तक पहुंचने तथा वहां से अपने फ्लैट लौटने में समय, श्रम एवं अर्थसाध्य कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। कारों की मीलों लम्बी कतारों में फँसी अपनी कार में बैठे घंटों इन्तजार का तनाव झेलना पड़ता है।[9] सामाजिक जीवन में एकाकीपन, अलगाव, मानसिक दबाव तथा असुरक्षा की भावनाएँ बढ़ रही है। इसी कारण प्रत्येक व्यक्ति भरी भीड़ में अकेला होता जा रहा है।[10]

मानसिक अशान्ति के इस चक्रव्यूह में फँसा हुआ व्यक्ति भौतिक पदार्थों के अधिकाधिक उपभोग की तरफ बढ़ रहा है। विकसित देशों की बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपने संसाधनों के कारण अपने उत्पादनों की बाजारों में खपत बढ़ाने के लिए उपभोक्ताओं का तरह–तरह से आकर्षित करके 'उपभोग–प्रवृत्ति' को बढ़ावा देने में संलग्न है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि पृथ्वी का सम्पूर्ण पर्यावरण तरह–तरह के प्रदूषणों से दूषित हो गया है तथा प्राकृतिक संसाधनों का दोहन अपनी चरमसीमा पर पहुंच गया है। आकाश, भूमि तथा जल तीनों की चिन्त्य स्थिति है। विभिनन प्रकार के प्रदूषणों के कारण पृथ्वीलोक के जीवन की रक्षा करने वाली 'ओजोन परत' क्षत–विक्षत हो चुकी है। पृथ्वी की हरियाली रेगिस्तान में बदलती जा रही है। आदमी जंगल के हरे–भरे पेडों को काटता जा रहा है जिसके कारण रेगिस्तान बनने की क्रिया तेज होती जा रही है। चरागाहों तथा खेती करने योग्य जमीन का आवश्यकता से अधिक उपयोग किया जा चुका है। मनुष्य ने अपना तथा अपने पशुओं का पेट भरने के लिए ही नहीं अपितु मकानों के निर्माण, ईंधन, औषधि आदि के लिए भी पेड़–पौधों को बहुत बड़ी मात्रा में नष्ट कर दिया है। जब वर्षा होती है तब वर्ष का जल भूमि में प्रवेश किये बिना भूमि की खाद को बहा ले जाता है। इसके कारण धीरे–धीरे वनस्पति

RRIJM 2015, All Rights Reserved

तथा खादवाली मिट्टी के नष्ट हो जाने से मरूस्थल का दायरा बढ़ रहा है। महानगरों तथा औद्योगिक प्रतिष्ठानों के कार्बनिक तथा अकार्बनिक अवशिष्ट जल में मिलकर अधिकांश नदियों के जल को प्रदूषित कर रहे है। प्रदूषित जल ही रिस–रिसकर भूमि के अन्दर जाकर भूमिगत जल में मिल रहा है। एक दो दशकों में पानी की जरूरत दुगुनी हो जाएगी। एक तरफ पानी निरन्तर प्रदूषित हो रहा है, दूसरी तरफ उपभोक्ताओं के लिए अधिकाधिक पेयजल उपलब्ध कराने की समस्या बढ़ती जा रही है। भौतिकवादी दृष्टि संघर्ष एवं दोहन की वृत्तियों का संचार करती है। गांधी की दृष्टि अहिंसा पर आधारित है। उनकी दृष्टि व्यक्ति के मन में अहिंसा का भाव पैदा करती है। अहिंसा व्यक्ति कभी प्रकृति पर विजय प्राप्त करने का प्रयास नहीं करता। अहिंसा व्यक्ति प्रकृति से सामरस्य स्थापित करता है। अहिंसक व्यक्ति प्रकृति के संसाधनों का दोहन नहीं करता। वह प्रकृति एवं परिवेश के साथ भावात्मक संबंध स्थापित करता है। वह इस विचार के प्रति प्रतिबद्ध होता है कि मनुष्य जगत तथा प्रकृति जगत अन्योन्याश्रित है। मनुष्य को प्रकृति पर शासन करने की लालसा को छोड़कर उसके साथ समरस होने का प्रयास करना होगा। मनुष्य को यंत्रों पर इतना अधिक आश्रित नहीं होना चाहिए कि वह प्रकृति से ही दूर चला जाए। मनुष्य एवं उद्योग दोनों के यंत्रचालित होने के दुष्परिणाम स्पष्ट है। इससे बेरोजगारी का अनुपात बढ़ रहा है तथा प्रकृति में प्रदूषण को प्रसार हो रहा है। मानव संसाधनों का सुनियोजित उपयोग जरूरी है। मानव–श्रम एवं शक्ति के पूर्ण समायोजन हो जाने के बाद ही औद्योगिक प्रतिष्ठानों को 'स्वचालन' की शरण लेनी चाहिए, मनुष्य को 'रोबोट' से अधिक महत्व मिलना चाहिए। ऐसी प्रबन्ध कुशलता से क्या लाभ जो मानव–समूहों को रोजगार के अवसरों से वंचित कर दे। उत्पादन, प्रगति, विकास, समृद्धि आदि की सार्थकता तभी मानी जा सकती है जब ये समाज में मनुष्य–समूहों तथा समुदायों की आशा–आकांक्षाओं की पूर्ति में अपना योग देने में समर्थ हो तथा मनुष्य जाति में मानवीयता, नैतिकता एवं सृजनात्मकता की भावना का विकास करे। गांधी के विचार स्पष्ट है–'पृथ्वी सभी मनुष्यों की जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त संसाधन प्रदान करती है, लेकिन लालच पूरा करने के लिए नहीं'।[11]

निष्कर्ष–

यही कहा जा सकता है कि गांधी जी के सभी सिद्धान्तों, उनके उद्देश्यों को तथा उनके विचारों पर दृष्टिपात करने पर यह निष्कर्ष निकलकर सामने आता है कि यदि वर्तमान समय में गांधी के विचारों को अमल में लाया, तो आज जो सामाजिक और आर्थिक जीवन में जिन समस्याओं का सामना समाज को करना पड़ रहा है वह नहीं करना पड़ता। आज देश में जो भ्रष्टाचार, बेईमानी तथा कालाबाजारी की जो बुराईयॉ फैल रही है उनसे बचने के लिए गांधी जी के सिद्धान्तों पर चलना अनिवार्य है।

संदर्भ सूचीः–

1. बी.आर. नंदा– महात्मा गाँधी, एक जीवनी, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, पृ. 33
2. बृजेन्द्र खरे–हमारी आजादी गांधी की देन, साक्षरता निकेतन प्रकाशन, 1968, पृ.6
3. डॉ. प्रभात कुमार–गांधी दर्शन, कॉलेज बुक डिपों, जयपुर, 1972, पृ. 73
4. राजन्द्र प्रसाद– चम्पारण में गांधी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1965, पृ.6
5. प्रभात कुमार–गांधी विचार मंथन, न्यू ग्राफिक आर्ट पब्लिकेशन, 1999, पृ.7
6. विवेक रामपाल– महात्मा गांधी–जीवन और दर्शन, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 1966, पृ.1
7. डॉ. वेद प्रकाश वर्मा–महात्मा गांधी का नैतिक दर्शन, इन्दू प्रकाशन, दिल्ली, 1979, पृ.2
8. डॉ. लक्ष्मी मेनन– रस्किन एण्ड गांधी, सर्वसेवा संघ, वाराणसी, 1965, पृ.13
9. विष्णु प्रभाकर–मेरे समकालीन (गांधी जी) सस्ता साहित्य, नई दिल्ली, 1960, पृ.71
10. प्रभुदास गांधी–जीवन प्रभात, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1954 पृ.13
11. श्री मन्नारायण–बापू के सपनों का भारत, अगस्त, 1972, पृ.64

RRIJM 2015, All Rights Reserved